IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

वर्तमान भारतीय समाज में संगीत वाद्यों की स्थिति एवं वर्गीकरण

डॉ0 बृजेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
पी0जी0 कालेज पट्टी
प्रतापगढ़ उ0प्र0

भूमिका

वैदिक काल में ही संगीत वाद्य भारतीय समाज के मुख्य अंग बन गये थे। उस काल में यज्ञ आदि कृत्यों पर सामगान के गायन की परम्परा थी। उस साम संगीत की संगति वीणा, वेणु और मृदंग पर होती थी। सामान्य जनों के मनोरंजनार्थ जो लौकिक संगीत प्रचलित था, उसमें भी विभिन्न वाद्यों का प्रयोग होता था। कालान्तर में देवालयों, युद्धस्थलों, रंग–भवनों आदि के साथ–साथ प्रत्येक सामाजिक एवं धार्मिक कृत्यों पर भी वाद्यों का वादन किया जाने लगा। राजा एवं देवों के विभिन्न क्रिया–कलापों की सूचना भी वाद्यों के माध्यम से दी जाने लगी। वात्स्यायन के काल में अच्छा नागरिक बनने के लिए वीणा, मृदंग आदि को सीखना आवश्यक माना जाने लगा। चाणक्य ने तो गुप्तचरों को शत्रु–दुर्ग में रहकर उनके आक्रमण आदि की सूचना शंख तथा दुन्दुभि वाद्यों के माध्यम से देने का निर्देश दिया था। राजा सोमेश्वर ने निर्देश दिया कि वाद्य–वादन को सभ्य पुरुषों के साथ बैठकर विधिपूर्वक श्रवण करना चाहिए। उन्होंने यह भी बतलाया कि देवगृह, राजमहल एवं घोड़ा–हाथी के सैन्य–समूह में तथा आह्वान, विभिन्न उत्सव एवं श्रेष्ठ कर्मों में गीत तथा नृत्यरहित जब वाद्यों का वादन होता है, तो उसे आदरणीय माना जाता है। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं के कुछ देवी–देवताओं की कल्पना बिना उनके प्रिय वाद्यों को दर्शाया ही नहीं जा सकता, उदाहरणार्थ–नटराज, शिव का डमरू, काव्य एवं संगीत की अधिष्ठात्री, मां सरस्वती की वीणा, नटवर श्रीकृष्ण की वंशी आदि। इस प्रकार प्राचीन काल से ही संगीत कला एवं उसके वाद्यों ने भारतीय समाज को जीवन्तता प्रदान की है।

भारतीय संगीत के वाद्यों की अन्धकारमय स्थिति तब प्रारम्भ हुई, जब यहाँ मुसलमानी शासन स्थापित हुआ। उस काल में अत्यन्त सुनियोजित ढंग से प्राचीनकालीन भारतीय संस्कृति को नष्ट करने का प्रयत्न किया गया, जिसका दुष्प्रभाव भारतीय संगीत एवं उसके वाद्यों पर भी पड़ा। संगीत बादशाहों के भोग–विलास का साधन बन गया। जनता में संगीत एवं वाद्यों के वादन सीखने की प्रवृत्ति मंद पड़ गई। यही कारण है कि नाट्यशास्त्र, संगीत

रत्नाकर आदि संगीत–ग्रन्थों में उल्लिखित वीणाओं के विविध प्रकार तथा अवनद्ध वाद्यों के अनेकानेक भेद मुस्लिम शासन–काल में लुप्त हो गए। संगीत वाद्यों की यही स्थिति अंग्रेजी शासन–काल तक बनी रही। केवल कुछ पर्वों और त्यौहारों पर थोड़े से लोक वाद्यों का वादन अवश्य होता रहा।

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पूर्व तक भारतीय समाज के लोगों द्वारा मांगलिक उत्सवों, विभिन्न त्यौहारों, धार्मिक स्थलों आदि पर संगीत के तो आयोजन सदैव कराए जाते थे, किन्तु उनके द्वारा स्वयं गायन–वादन करना सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतिकूल माना जाता था। इस तथ्य की पुष्टि पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्करजी ने भी की है। इस कारण विभिन्न वाद्यों के वादकों की संख्या समाज में सीमित रह गई। मांगलिक पर्वों एवं त्यौहारों के अवसर पर शहनाई, नागस्वरम, खुर्दक, तविल आदि। धार्मिक अनुष्ठानों के समय मुखवीणा, शंख, मृदंग, घण्टा, श्रृंग आदि वाद्यों का उपयोग होता था। इन वाद्यों के अतिरिक्त समाज में सितार, तबला, बेला, वंशी आदि वाद्यों का प्रयोग एक सीमा तक होता था। सन् 1947 में जब भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ, तो यहाँ के संगीतज्ञों, नागरिकों एवं राष्ट्रनायकों के सहयोग से संगीत तथा उसके वाद्यों को अपनी खोई हुई प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

हिन्दू समाज में सोलह संस्कार पुंसवन से लेकर अन्त्येष्ठि तक विविध वाद्यों के निनाद से परिव्याप्त रहते हैं। संगीत ने भारतीय जन–मानस को अपनी भावभीनी संगीत–लहरी से इस प्रकार आप्लावित कर लिया है कि धर्म–ग्रन्थों के आदेशों के विरुद्ध भी लोग अपनी संगीतप्रियता को नहीं त्याग सके हैं। कुरान में संगीत के प्रति अधिक उदासीनता व्यक्त की गई है, किन्तु मुसलमान लोग भी अपने विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गायन–वादन से युक्त संगीत–लहरी का आस्वादन करते और कराते रहे हैं। बीसवीं सदी के प्रख्यात गायक उस्ताद फैय्याज खां, उस्ताद बड़े गुलाम खां, उस्ताद अमीर खां एवं प्रसिद्ध तंत्री वादक उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, उस्ताद विलायत खां, उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर, उस्ताद रईस खां, प्रसिद्ध तबलावादक उस्ताद अल्लारक्खा खां, उस्ताद अहमद जान थिरकुआ एवं भारतरत्न उस्ताद बिस्मिल्लाह खां (शहनाई) आदि मुसलिम सम्प्रदाय के ही अनुयायी रहे हैं, जिन्होंने भारतीय संगीत को विश्व के पटल पर पहुँचाने की महती कार्य किया।

जब हम समाज के धार्मिक एवं अन्य कृत्यों का अवलोकन करते हैं, तो देखते हैं कि संगीत उसका अनिवार्य अंग बन गया है। प्रायः प्रत्येक देवालयों में डमरू, शंख, घण्टा आदि का वादन अवश्य होता है। विभिन्न पर्वों, त्योहारों तथा उत्सवों पर संगीत की ध्वनि गूँजती रहती है। गायन–वादन के समारोह बराबर आयोजित होते रहते हैं। इसका अवलोकन फाग के अवसर पर वृन्दावन में, वैशाखी के अवसर पर पंजाब में, दुर्गा–पूजा तथा सरस्वती–पूजा के अवसर पर बंगाल में किया जा सकता है। इस प्रकार भारतीय समाज में वाद्यों ने प्रमुख स्थान बना लिया है।

मांगलिक पर्वों तथा सामाजिक संस्कारों के अवसर पर समस्त उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में शहनाई–वादन तथा दक्षिण भारतीय प्रदेशों में नागस्वरम् वादन की एक परम्परा बन गई है। घरों के अन्दर गृहणियाँ भी ढोलक की संगति में गायन करने लगती है। बंगाली समुदाय में बिना शंख–ध्वनि के कोई

मांगलिक कार्य ही सम्पन्न नहीं होता है। मांगलिक पर्वों पर प्रयुक्त वाद्य सुमधुर स्वर–लहरियों से निनादित होते रहते हैं, जबकि धार्मिक एवं युद्ध–स्थलों पर वादन किये जाने वाले वाद्य गंभीर घोष से युक्त होते हैं।

मांगलिक पर्वों पर वादन किए जाने वाले वाद्य प्रायः हर्षोत्पादक तथा उच्च ध्वनि से युक्त होते हैं। विभिन्न त्यौहारों पर वादन किये जाने वाले वाद्य प्रायः तुमुल ध्वनि वाले होते हैं। उनसे स्वरों का आनन्द तो कम प्राप्त होता है, किन्तु उल्लास अधिक मात्रा में प्रकट होता है। अन्य समारोहों के अवसर पर वादन किए जाने वाले वाद्य आनन्ददायक होते हैं। उनके स्वर तीक्ष्ण नहीं होते हैं, बल्कि वे मन्द तथा मधुर स्वर उत्पन्न करते हैं। इन भिन्न–भिन्न वाद्यों के श्रवण मात्र से ही उनके वादन–उद्देश्य का पता चल जाता है। शहनाई या नागस्वरम् वादन के श्रवणमात्र से ही यह अनुमान कर लिया जाता है कि शादी–विवाह आदि या कोई मंगल–कार्य सम्पन्न हो रहा है। शंख, घण्टा आदि की ध्वनि के श्रवणमात्र से यह अनुमान कर लिया जाता है कि कोई धार्मिक अनुष्ठान सम्पादित हो रहा है। इसे ही वाद्यों का प्रतीकात्मक स्वरूप कहा जाता है।

भारतीय समाज के दैनिक जीवन में भी वाद्यों का उपयोग होता है। बच्चा ज्यों ही थोड़ा बड़ा होता है, तो उसे सीटी, झुनझुना आदि दे दिया जाता है। इन वाद्यों से वह अपने जीवन की संवर्धन लीला को प्रारम्भ करता है। भगवान् का कीर्तन या पूजा–पाठ, शंख, करताल, घण्टा/घण्टी आदि के बिना पूर्ण ही नहीं होते हैं। भिक्षा माँगते समय भिक्षुओं तथा साधुओं द्वारा श्रृंग, शंख आदि का उपयोग होता है। दक्षिण भारत में देसरीज एवं ऐन्डिस नामक भिक्षुओं द्वारा कई प्रकार का वादन किया जाता है। उनके इस वाद्य–समूह को वहाँ के लोग 'मेला' कहते हैं। किसी–किसी 'मेला' में एक मुखवीणा, एक वंशी एक सीधी बाँसुरी, एक आधार–स्वर देने वाला वाद्य तथा एक ढंकी नामक अवनद्ध वाद्य भी सम्मिलित रहता है।

अतः संगीत वाद्य भारतीय समाज में आरोधक से आराध्य तक व्याप्त है। यह भारतीय समाज में संगीत वाद्यों की प्रतिष्ठा का चरमोत्कर्ष है।

वाद्य यंत्रों का वर्गीकरण

वैदिक काल से लेकर भरत के पूर्व समय तक वाद्यों का कोई निश्चित समय प्राप्त नहीं होता है, किन्तु भरत व अन्य आचार्यो ने जिन चार प्रकार के वाद्यों का वर्णन किया है उनका उल्लेख अवश्य मिलता है। सर्वप्रथम भरत ने चार प्रकार के वाद्यों का उल्लेख 'नाट्य शास्त्र' में वर्गीकरण के रूप में प्रस्तुत किया है–

ततं चैवावनद्ध धनं सुशिरमेव च।
चर्तुविधं तु विज्ञेयमातोधं लक्षणावितम्।

इस प्रकार तत् धन अवनद्व एवं सुषिर वाद्यों का वर्गीकरण बताया गया है। तथा इन वाद्यों की विशेषता निम्न पंक्तियों से स्पष्ट हैः–

ततं तंत्रीकृत गेयमवनद्धं पौश्करम्।
धनं तालुस्य विज्ञेयः सुशिरो वंश उच्यते।।

अर्थात तत् को तंत्री वाद्य अवनद्व को पुष्कर वाद्य धन को ताल वाद्य एवं सुषिर को वंशी वाद्य बताया गया है। प्रायः ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे प्राचीन वाद्य बासुरी को माना जाता है। इस वाद्य के सरल बनावट को देखकर भी इस बात की पुष्टि होती है कि यह वाद्य आदिम मनुष्य की खोज है। जब मनुष्य की जीवन प्रकृति पर निर्भर था तो प्रकृति के साथ सहचर्य में रहकर उसने हवा के द्वारा वृक्षों पर विभिन्न प्रकार की ध्वनि को उत्पन्न होते हुए देखा। इस प्रकार की चीजों से प्रभावित होकर अपनी सांगीतिक चेतना तथा बुद्धि से उसने उसी आधार पर विभिन्न वाद्य बनाये तथा कालान्तर में वह विकसित होता गया।

भारतीय वाद्य यंत्रों को चार वर्गों में विभाजित किया गया है। परन्तु आज वर्तमान समय में एक नया वाद्य यंत्र विद्युत संचालित वाद्य भी बखूबी प्रयोग हो रहा है।

तत्–वाद्य या तारदार वाद्य

तत्–वाद्य, वाद्यों का एक ऐसा वर्ग है जिनमें तार अथवा तंत्री के कम्पन से ध्वनि उत्पन्न होती है। यह कम्पन तार पर उंगली छेड़ने या फिर ताल पर गज चलाने से उत्पन्न होती है। कंपित होने वाले तार की लंबाई तथा उसको कसे जाने की क्षमता स्वर की ऊंचाई (स्वर मान) निश्चित करती है और कुछ हद तक ध्वनि की अवधि भी सुनिश्चत करती है। तत्वाद्यों को प्रायः दो भागों में विभाजित किया गया है। तत् वाद्य और वितत् वाद्य आगे इन्हे सारिका (पर्दा) युक्त और सारिका विहीन (पर्दाहीन) वाद्यों के रूप में पुनः विभाजित किया जाता है।

हमारे देश में तत्वाद्यों का प्राचीनतम प्रमाण धनुष के आकार की वीन या वीणा हैं। इसमें रेसे या फिर पशु की अतड़ियों से बनी भिन्न–भिन्न प्रकार की समान्तर तारें होती थी। इसमें प्रत्येक स्वर के लिए एक तार होती थी जिन्हे या तो उंगलियों से छेड़ कर या फिर कोना नामक मिजराव से बजाया जाता है। तथा इस वाद्य की श्रेणी में निम्न वाद्य पाये जाते हैं–सितार, सरोद, शहनाई, इकतारा, तानपुरा, सारंगी, वीणा आदि।

सुषिर वाद्य

सुषिर वाद्यों में एक खोखली नलिका में हवा भरकर अर्थात् फूक मारकर ध्वनि उत्पन्न की जाती है। हवा के मार्ग को नियंत्रित करके स्वर की ऊंचाई सुनिश्चित की जाती है और वाद्य में बने छेदों को उंगलियों की सहायता से खोल कर और बंद करके क्रमशः राग को बजाया जाता है। इस वाद्य की श्रेणी में निम्नलिखित वाद्य पाये जाते है–बांसुरी, शहनाई, हारमोनियम, माउथ आर्गन इत्यादि।

घन वाद्य

मनुष्य द्वारा आविष्कृत सबसे प्राचीन वाद्यों को घन वाद्य कहा जाता है। एक बार जब ये वाद्य बन जाते हैं तो फिर इन्हे बजाने के लिए कभी भी विशेष सुर में मिलाने की आवश्यकता नहीं होती। प्राचीनकाल में यह वाद्य मानव शरीर के विस्तार जैसे डण्डियों, तालों तथा छड़ियों आदि के रूप में सामने आये और ये दैनिक जीवन में प्रयोग में लायी जाने वाली वस्तुओं जैसे–पात्र (बर्तन) कड़ाही, झाझ, तालम आदि के साथ बहुत गहरे रिश्ते जुड़े हुए थे। मूलतः ये वाद्य लय प्रदान करने का कार्य करते हैं। इस वाद्य की श्रेणी में घण्टा, घड़ियाल, चिमटा आदि पाये जाते हैं।

अवनद्ध वाद्य

इस वाद्य की श्रेणी में उस प्रकार के वाद्यों को रखा गया है जिनका मुख चमड़े से बंधा हुआ होता है। तथा उन्हे उंगलियों से या डंडियो के सहारे से प्रहार करके बजाया जाता है। प्रायः अवनद्ध से तात्पर्य ही है जिसका मुख चमड़े से मढ़ा हुआ हो। आज वर्तमान समय में अवनद्ध वाद्य संगत कार्य को करते हुए स्वतंत्र रूप से भी कार्य कर रहा है इस वाद्य की श्रेणी में तबला, ढ़ोलक, पखावज, मृदंग, नगाड़ा इत्यादि रखा गया है।

विद्युत संचालित वाद्य

प्रायः इस प्रकार के वाद्य यंत्रों की श्रेणी में ऐसे वाद्यों को रखा गया है जिनका संचालन विद्युत के माध्यम से किया जाता है। आज इस प्रकार के वाद्य सस्ते दामों पर प्रत्येक दुकान पर आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। वर्तमान समय में बहुत प्रकार के विद्युत संचालित वाद्य देखने को मिलते हैं। परन्तु सिंथेसाइजर और आक्टोपैड ने अपने आप में उपरोक्त चारों प्रकार के वाद्यों को समाहित कर लिया है। सिंथेसाइजर से सुषिर तथा तत्वाद्यों के किसी भी वाद्य को बजाया जा सकता है तथा आक्टोपैड से घन तथा अवनद्ध वाद्य के किसी भी वाद्य को तथा किसी भी ताल को कलाकार बजा सकता है।

प्रथम वाद्य यंत्र की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विचारकों का अपना–अपना अलग मत देखने को मिलता है। परन्तु लगभग विचारकों का मत है कि वाद्य यंत्र का उद्भव एवं विकास स्वतन्त्र रूप से मानव एवं प्रकृति के साथ हुआ एवं प्रथम वाद्य 'बाँसुरी' के रूप में माना जाता है। धीरे–धीरे संगीत में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का उद्भव एवं विकास होता चला गया एवं आज वही पारम्परिक वाद्य इलेक्ट्रॉनिक का रूप धारण करते चले जा रहे हैं।

इसी क्रम में विभिन्न प्रकार के पारम्परिक एवं इलेक्ट्रॉनिक वाद्यों का समायोजन करके प्रसिद्ध तबला वादक जयवंत उत्पात जी ने एक इलेक्ट्रॉनिक वाद्य हैण्ड सोनिक का विकास किया, जो विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्रों को अपने अन्दर समाहित कर चुका है तथा इस एक वाद्य से शास्त्रीय एवं लोक संगीत के कई वाद्यों को बजाया जा सकता है, किन्तु इसको बजाने के लिए पारम्परिक वाद्यों की तरह की अंगुलियों का संचालन करना होता है। इस वाद्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें यदि लहरा एवं नगमा भी प्राप्त करना चाहे तो एक बटन दबा कर लहरा या नगमा प्राप्त किया जा सकता है। तथा नगमा के साथ संगत भी किया जा सकता है, जो हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के लिए एक विशेष योगदान है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. मलिक डॉ0 भीम सिंह, लोकगीत का सांस्कृतिक मूल्यांकन।
2. शर्मा डॉ0 श्री राम, लोक साहित्य, सिद्धान्त एवं प्रयोग।
3. अनिल, संतराम, कन्नौजी लोकगीत।
4. शर्मा डॉ0 पूरणचन्द्र, लोक संस्कृति के क्षितिज।
5- सिंह करनपाल, पूर्वाचल के लोकसंगीत।